दर ए काबः पर, कुफ्र बकता है मीर

सत्येन्द्र कुमार

सत्येन्द्र कुमार जनवादी लेखक संघ की राष्ट्रीय परिषद के सदस्य हैं। उनका कविता संग्रह *'आशा इतिहास से संवाद है'* प्रकाशित और चर्चित।

मैं क्यों बार बार
दिल्ली की गलियों में
मीर के मकान का पता पूछता हूं
यह जानते हुए कि मीर
कब के जा चुके हैं
दिल्ली छोड़ कर लखनऊ।
उस ट्रेन का नम्बर, वह बोगी, वह सीट
सब कुछ आज भी मुझे याद है।
याद है वह सराय
जिसमें वे पहली बार ठहरे थे
उस तांगे वाले का नाम भी।
साथ साथ वह पहला मुशायरा
जिसमें शिरकत की थी मीर ने
जहां उन्होंने दिल्ली से अपने उजड़ने का
जिक्र बयां किया था

और तुरत ही छा गये थे
नशे की तरह पूरे अवध पर।
फिर यह सब जानते हुए
मैं क्यों बार बार ढूंढ रहा हूं
मीर को दिल्ली की गलियों में?
क्यों पूछ रहा हूं उनके मकान का पता?
मैं क्यों नहीं जाता लखनऊ
जाकर पूछूं लोगों से उनका हाल
लेकिन क्या करूं
उस शहर-ए-नापुरसां में जाकर
जहां जिस रेख्ते को
उसने लाख अदा से कहे
कोई न था उस दयार में
उनकी जबां को समझने वाला
और न वहां वह अवाम थी
जिससे उनकी गुफ्तुगू थी।
उसने खुद कहा था
'न मिल मीर अब के अमीरों से तू
हुए हैं फकीर उनकी दौलत से हम'
वही अपने शेरों को बेच दिया
चंद सिक्कों के लिए
एक अय्याश नवाब के हाथों
जो मुर्गे की लड़ाई के बीच
उन्हें गजलें सुनाने का हुक्म देता था
मैं दिल्ली में
उस उस्ताद के पश्चाताप को जी रहा हूं
लखनऊ में न उनकी शायरी बची
न तेवर बचा
न अपने होने का एहसास बचा।
बचा तो एक नपुंसक सत्ता के
चाकर की चाकरी
मैं 'बल्लीमारान' के मुहाने पर
खड़े होकर सोचता हूं
क्यों नहीं लौटे मीर दिल्ली?
क्या उनके लिए कुछ भी नहीं बचा था दिल्ली में?

कारवां गुजरने के बाद
गुबार देखने के लिए तो
एक बार लौटते अवध से दिल्ली।
दिल्ली के जख्मों को जरूरत थी
उनकी उंगलियों के स्पर्श की।
क्या मीर का दिल्ली से लखनऊ जाना
कृष्ण के गोकुल से वृंदावन जाने जैसा था?
कान्हा तो छोड़ गये गोकुल में
अपनी बंसी, मोरपंख और जीवन का संगीत
मथुरा में सत्ता के प्रपंच के अलावा
और क्या था उनके लिए
मीर की शायरी का मोरपंख भी
कहीं दिल्ली में ही तो नहीं छूट गया?
कभी कभी सोचता हूं
मैं मीर का 'उद्धव' तो नहीं
उनकी तरफ से
हर मस्जिद को उनका सलाम कहा
हर मकबरे पर आयः ए रहमत पढ़ा
नयी नयी पेशानियां पैदा कर
हर दरवाजे पर सजदा किया
हर गली के सामने ठहर कर
दर-ओ-बाम पर निराशा भरी दृष्टि डाली
उनके दोस्तों को ढूंढ कर
उनकी उदासी का जिक्र किया
लोग कहते हैं
मीर की गली का पता मालूम था जिसे
'बिरला हाउस' में उसका कत्ल किया गया।
दिल्ली में ही कहीं सात संदूक के भीतर
छुपा कर रखा गया है मीर का पता
जब जब मीर छोड़ कर जाते हैं दिल्ली को
हर बार '1947' घेर लेता है दिल्ली को
कई बार लुटी
कई बार उजड़ी
कई बार आबाद हुई
लेकिन हर बार मीर की गली ही

गुम हुई दिल्ली में।
हम यह कैसे समय में जी रहे हैं
कि हमारे समय में ही खो गयी मीर की गली
क्या इतने बेअसर हो गये मीर दिल्ली में?
दिल्ली फिर से फिरंगियों के हाथों की
कठपुतली बनी हुई है
(अब तो दिल्ली में
अपने और फिरंगियों का भेद मिट गया है)
वे अपने नाखूनों से नोंच रहे हैं
दिल्ली के हृदयपिण्ड को
मैं आज भी दिल्ली की नीमबाज आंखों में
मीर के सपनों का तैरता बादल देख रहा हूं।
मुझे लगता है
दिल्ली में मीर होते
तो दिल्ली लाहौर का फर्क नहीं होता
तब मीर लाहौर होते
मीर दिल्ली होते
मीर मेरठ होते
मीर मुम्बई होते
मीर के प्रीत की डोर का मांझा
कभी मेसोपोटामिया, कभी मिस्र, कभी लाहौर
की गलियों में होता
फिर तो मीर मीर होते
मुझे उनकी गली
और मकां का पता
ढूंढने के लिए यूं भटकना नहीं पड़ता।
फिर तो मुझे मीर कभी रंगों की पालकी पर बैठे
तो कभी इंद्रधनुष के झूले पर झूलते मिलते
स्याह सन्नाटे में
मैं मीर को अपने अंदर बसाये
उन्हीं के शेर दुहरा रहा हूं दिल्ली में

'जो हो मीर भी उस गली में, सबा
बहुत पूछियो तुम, मिरी ओर से।'